DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

लोकोत्सवता

कजरिया

सन् ११८२ ई. का सावन अपनी सारी रंगीनी और चहल-पहल के साथ उतरा था। उसे मालूम था कि चंदेलों की राजधानी महोबा में उसकी जितनी अगवानी होती है, उतनी और कहीं नहीं। इसीलिए कारी बदरिया, रिमझिम मेह, दमकन् बिजुरी, सजी-धजी हरयारी, रचनू मेंहदी, नचत-बोलत मोर-पपीरा और तीज-त्यौहार-सब अपने-अपने करतब दिखाने लगे थे। अलमस्त पहाड़ और अलगरजी ताल दुर्ग की तरफ आँखें गड़ाये खड़े थे। शायद सावन की दिखनौसी सौगातों की ललक से।

लेकिन अचानक इतनी बोझीली खामोशी क्यों ? हर आदमी चुप ! यहाँ तक कि दुर्ग की प्राचीरें चुपचाप खड़ी हुई। दिल्लीनरेश पृथ्वीराज चौहान ने महोबा का घेरा डाल दिया है, इसलिए ? उसने चन्द्रावलि, महाराज परमर्दिदेव की राजकुमारी का डोला माँगा है। कविराज जगनिक आल्हा-ऊदल को लुवाने कन्नौज गए थे, पर अभी तक नहीं लौटे। महारानी माल्हनदे ने पत की पगिया सैंपने भेजा है उन्हें।

'पाग तक राजमाता के चरणों में रखने दे दी है चन्द्रा, फिर भी आल्हा-ऊदल नहीं आएँगे ? तू क्यों रोती है ? ' माल्हनदे चन्द्रावलि को समझा नही थी और राजकुमारी बिलख-बिलखकर रो रही थी-'कजरियों के दौने मुरझा चले हैं माँ, राखी उदास पड़ी है। दिन चला गया, रात भी खिसक रही है... कब तक देखोगी ऊदल को....? ' और ब्रह्मजित ने आकर रोष में कहा-'बहिन, क्यों हठ करती है ? इतना बड़ा मदन सागर पड़ा है, सोने की नादें दूधों से भरी हैं...इन्हीं में कजरियाँ खौंट लो...दुर्ग से उतरकर युद्ध लड़ना मौत को बुलाना है... ' चन्द्रावलि गरज उठी-'भइया, मौत से डरते हो, तो बैठो चुपचाप...हम तो कजरियाँ कीर्ति सागर में ही खौंटेंगी...लड़ ले चौहान...चन्द्रावलि का डोला मौत का डोला है...मौत का...। '

और पौ फटते ही महोबा के दुर्ग से नौ सौ डोले उतरे। हर डोले में दो वीरांगनाएँ, तलवार और कटारी के साथ एक-एक विष की पुड़िया लिये हुए और कजरियों के लहलहाते दोनों की रखवाली में मौत से जूझने को तैयार। पीछे रेंगती चंदेली सेना। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल। चौहानों ने धावा बोल दिया। घमासान युद्ध।कीर्ति सरोवर की पार पर डोले छिके रहे। चंदेल सेना पीछे हटी और चन्द्रावलि का डोंला आगे बढ़ा। माल्हनदे ने इशारे से रोका। कठिन परीक्षा की घड़ी। चन्द्रावलि डोले से उतरी की जोगियों की एक सेना चौहानों पर टूट पड़ी। बाजी पलट गई।

ऊदल से मिलते-जुलते एक योद्धा जोगी ने चन्द्रावलि से कहा-'बहिना, खौंटो कजरियाँ... ' डोलों से युवतियाँ उतर पड़ीं। लाल-लाल सारीं और चोलीं पहने इन्द्रवधूटीं-सी रेंगीं। ऊपर घहराते बादल और नीचे खनकती तलवारें। बीच-बीच में दहाड़ें और कराहों के डरावने स्वर। कैसा अजीब दृश्य। बड़ी-बड़ी अँखियों में कजरारी नजरों सेइ धर-उधर टोह-सी लेतीं और सिर पर रखी कजरियों को सम्हालतीं युवतियाँ कजरी गीत गा उठीं। सरोवर के किनारे-किनारे मिठास बगराती हुईं।

सबसे आगे थी चन्द्रावलि। उसने जल में दोना रखा कि पृथ्वीराज चौहान ने आकर भाले की नोक से उसे उठाना चाहा, पर उस जोगी की झपटती तलवार ने उसे दो टुकड़े कर दिया। दोनों लड़ते-लड़ते दूर चले गए। आखिर चौहान हार गए और कजरियाँ खोंटकर चन्द्रावलि ने जोगी बनेऊ दल की पाग में खोंस दीं। राजमार्ग के दोनों तरफ योद्धा खड़े थे, बीच में कजरियाँ देती जा रही थी युवतियाँ और यथोचित प्रेम एवं सम्मान अर्पण कर रहे थे पति, भाई, देवर और

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

जेठ।

यह थी बारहवीं शती की एक ऐतिहासिक घटना, जिसने कजरियों के उत्सव को एक नया मान दिया है और लोकगीतों में आमूल परिवर्तन किया है। पहले कजरियाँ फसल और समृद्धि से जुड़ी थीं, पर इस प्रसंग से संबद्ध होकर भाई-बहिन के प्रेम की प्रतीक बन गई। यहाँ तक कि प्रेम और सद्भाव इतना आम हो गया कि अब कजरियाँ सभी के भाईचारे का संदेश सब जगह ले जाती हैं और होली के रंग तथा दशहरे के पान की तरह भारतीय संस्कृति की विरासत बन गई हैं।

भाई-बहिन के प्रेम का साक्षी एक प्राचीन लोकगीत-कजरियों या भुजरियों के गीतों में एक लोकगीत बहुत पुराना है, लगभग १३वीं शती का। उसमें पूरी कथाऊ पर की ऐतिहासिक घटना से मेल खाती है। सावन का महीना और कजरियों का त्योहार आ गया। भाई बहिन को ससुराल से ले आया। वह बहिन को समझा रहा है-

आसों के साउन घर के करौ आगूँ के दैहों कराय।
सोने की नादें दूदन भरीं सो कजरियाँ लेव सिराये।

इस वर्ष का सावन घर में मनाओ, अगले वर्ष बाहर कराऊँगा। घर में सोने की नादें दूध से भरी हैं, उन्हीं में कजरियाँ खोंटकर सिरा दो। भाई की यह सलाह बहिन नहीं मानती। उसकी जिद है कि या तो कजरियाँ तालाब में खुटेंगी या फिर सूख जाएँगी-

कै जैहें तला की पार भइया कै जैहें कजरियाँ सूक।

बहिन की हठ सुनकर भाई साफ-साफ कह देता है किइ स वर्ष के सावन में युद्ध होगा। जबरन प्राण क्यों लेती है ? लेकिन बहिन तैयार नहीं, वह श्रृंगार करती है और भाई कटारी, तलवार, ढाल आदि शस्त्रों से सजता है। घोड़ी के पैर और पूँछ रँगकर बालों में मोती, हीरा और लाल गूँथता है। फिर सवार होकर डोलों और चौड़ेलों के आगे चलता है। शत्रु-सेना उन पर टूट पड़ती है, तब बहिन को चेतावनी देता है-

टूटीं फौजें दुसमन कीं भगनें होय भग जाव।
हाँतै काऊ के परियो नई लग जैहै कुल में दाग।।

भई-बहिन की इज्जत का इतना ध्यान रखता है कि उसे शत्रु के हाथों पड़ने से रोकता है, क्योंकि उससे कुल कलंकित हो जाएगा। बहिन में पूरा विश्वास जमाकर वहग खुले मैदान में लड़ता है, और दुश्मनों को मारते-मारते उसकी भुजाएँ थक जाती हैं तथा ललकारते-ललकारते आवाज बैठ जाती है।

ऐतिहासिक घटना और लोकगीत-दोनों में काफी समानता है, लेकिन खास अंतर यह है कि एक में राजकुमारी और आल्हा-ऊदल जैसे वीरों का इतिहास है और दूसरे में सामान्य भाई-बहिन के रिश्तों का। लोकगीत राछरे में लोक का यथार्थ है, जो उस समय के इतिहास की सही तस्वीर बतलाता है। वह किसी राजा या सामंत की परवाह नहीं करता, वरन् जनचेतना को पालता-पोसता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि लोकगीत कैसे रचा जाता है और किस प्रकार लोकचेतना को समेटता है।

कजरियों का त्योहार-कजरियों या भुजरियों का त्योहार बुंदेलखंड में बड़ी धूम से मनाया जाता है। श्रावण-शुक्ल नवमी के अपराह्न स्त्रियों के झुण्ड मिट्टी लेने जाते हैं। पहले खदान की पूजा होती है, फिर कुछ गेहूँ-जौ के दाने

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

मिट्टी से ढँककर मिट्टी खोदी जाती है। अच्छी मिट्टी लोकगीतों के मीठे स्वरों के साथ घर आती है। नाइन द्वारा लाये हुए छेवले के पत्तों के दोनों को पूजकर उनमें मिट्टी और गोबर की खाद का मिश्रण रखा जाता है और गेहूँ तथा जौ बोये जाते हैं। लोग इच्छानुसार पाँच, सात या नौ की संख्या चुनते हैं, लेकिन जन्म या विवाह के बाद पहली बार तेयोहार पड़ने पर एक अतिरिक्त दोने में राई बोयी जाती है। दोने ढँककर रखे जाते हैं और रोज पानी और दूध के मिश्रण से सींचे जाते हैं। प्रति रात घी का दिया दिखाया जाता है। इस तरह उनमें पीले रंग के पौधे लहरा उठते हैं।

कहीं भादों की कृष्ण प्रतिपदा को और कहीं सावन की पूर्णिमा को कजरियाँ किसी सरोवर में खोंटी और सिराई जाती हैं। पहले घर में चंदन, अक्षत, पुष्प, आरती आदि से उनकी पूजा होती है, राखी चढ़ायी जाती है, भोग लगाया जाता है और झूला झुलाया जाता है, बाद में समूह के समूह उन्हें सिर पर रखकर सरोवर ले जाते हैं। छोटी बस्तियों और गाँव में ढोलक बजाकर सूचना दी जाती है, जिससे पूरी बस्ती की कजरियाँ एक निश्चित चौक या जगह में इकट्ठी होती हैं। फिर तरह-तरह के बाजों के साथ मधुर लोकगीत गुंजाती सरोवर जाती हैं। जलाशय के पहले थोड़ी देर के लिए कजरियाँ छेंकी जाने पर रुकी रहती है। जैसे ही जल में दोना रखा जाता है, कजरियाँ खोंट कर सिरा दिया जाता है। लौटने पर रास्ते के दोनों ओर आदमी पंक्तिबद्ध खड़े रहते हैं। स्त्रियाँ उन्हें कजरियाँ देती चलती हैं और वे उन्हें मस्तक से स्पर्श कर सम्मान प्रकट करते हैं।

कजरियों के बोने, खोंटने और देने में कोई भदभाव नहीं होता। हर जाति उसमें शामिल रहती है। यहाँ तक कि मुसलमान और ईसाई भी कजरियों को पवित्र मानकर आदर देते हैं। मतलब यह है कि यह त्योहार सबके बीच प्रेम और मैत्रि का प्रतीक बन गया है। खासतौर से नारी और पुरुष के स्नेह का। घर में बहिन भाई को, पत्नी पति को और माँ बच्चों को कजरियों के पवित्र बंधन में बाँध लेती है।

लोकादर्श और लोकभाव-१२वीं शती के पूर्व कजरियाँ मूलतः कृषि के सम्मान के लिए प्रतिष्ठित थीं। एक तो पूरे परिवार को मिट्टी के चुनाव, खाद मिलाना, बीज बोना, सींचना आदि की पूरी सीख घर बैठे मिल जाती थी, दूसरे, फसल का अंदाज लग जाता था। केवल इतना ही नहीं, कृषि पर निर्भर किसी भी भू-भाग या देश के लिए जरूरी है कि उसकी हर जाति और हर परिवार अर्थात् पूरा समाज कृषि को सम्मानित धंधा समझे। इसीलिए इसे एक तयोहार का स्वरूप दिया गया, एक सामूहिक प्रतिष्ठा और सामाजिक आदर्श के लिए सर्वमान्य हुआ। गहराई से सोचें, तो इससे प्रभावी हरितक्रांति और क्या हो सकती थी, पर आज त्योहारों और उत्सवों ने अपने मूल अर्थ ही खो दिए हैं और वे सिर्फ रूढ़ि बनकर जीवित हैं।

११८२ ई. की ऐतिहासिक घटना ने उसमें नया अर्थ भरा, जिससे कजरियों में जूड़ गया-भाई-बहिन का प्रेम। वह पवित्र प्रेम, जो कजरियों की रक्षा के लिए भाई की वीरता और बलिदान माँगता है। इस वजह से लोकादर्श बना-भाई-बहिन का प्रेम और उसकी रक्षा के लिए वीरता। उस युग में आवश्यकता भी थी और लोक बदला, तो लोकादर्श और लोकभाव क्यों न बदलें। लोककवि सारी युगचेतना को आत्मसात् कर गा उठा-

सबकी बैनें माई खोंट है कजरियाँ, मोरी बहिन परदेस...

बहिन भी अपने भाई के हित के लिए कितना त्याग करती है-

बदरिया रानी बरसौ बिरन के देसा में...

इ सीलिए बहिन की सारी आतुरता भाई या माँ के देश के लिए है-

सावन सेंदुरा माँग भरे बिरना चुनरी रँगाई बड़े भोर,
बीरन मोये माई को देस दिखैयो...

बहिन, कुल और देश की 'पत' के लिए भाई लड़कर खप जाता है। मतलब यह है कि उस समय की लोकसंस्कृतिइ न

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

लोकगीतों में आज तक बोलती है और प्रेम से जुड़ाव का संदेश देती है। क्या आज के पारिवारिक विघटन में ये लोकगीत एक नया अर्थ या नया आदर्श नहीं देते ?

मध्ययुग में कजरियों में फिर एक नया आदर्श जुड़ा और वह था पति-पत्नी का संयोग और वियोग-परक प्रेम। दाम्पत्य की भावना तो बहुत पुरानी है, लेकिन श्रृंगारिक प्रेम-भावना-प्रधान लोकगीतों से पता चलता है कि यह लोकभाव मध्ययुग के मध्य अर्थात् १६-१७वीं शती में आया। उसमें पति-प्रेम के दायरे में सास, देवर, जेठ, माता, पिता आदि बी प्रविष्ट हुए और दूसरी तरफ सावन का महीना एक सार्थक उद्दीपन बन गया। लोकनायिका कारे बादर को देखकर कह उठी-

गरज तरज घनघोर कें उनईं जाव सुनाव।
जौ विरहिन सी बीजुरी उतईं जाव चमकाव।।
मो दुक्खिन की तुम करौ इत्ती कऊँ सहाय।
तो आँखिन में राखहों कजरा तुमें बनाय।।

इसी प्रकार पारिवारिक जीवन के छोटे-छोटे संघर्ष, जैसे सौत कीई र्ष्या, ननद-भौजी के मनमुटाव और बहनोई-साले के दाँव-पेंच भी लोक की मनःस्थितियों का हू-ब-हू चित्र खड़ा करने लगे। साथ में भक्ति से प्रेरित होकर राम-सीता या राधा-कृष्ण के नाम के बहाने लोकनायिका या नायक की मानसिकता भी उभरने लगी। इस तरह परिवार के महीन संबंधों की गाँठें प्रकट होने लगीं। सास ने बहू के भाई से एक शर्त रखी कि यदि बहू सारा अनाज पीस कर रख दे, सब भोजन बना दे और पानी भर दे, तो मायके जा सकती है-

सासो बवा जू तुमरीं पईयाँ लागों बहिन विदा कर देव।
जितने बंडन गौहूँ भररे है बहू उतनई पीस मायके जाव।
जितने पीपर में पत्र लगे हैं उतनई पै घर जाव।
जितनई कुंवल में नीर भरो है उतनई भर घर जाव।
तुसतौ जाव बिरना अपने देस खाँ सासो पै पर जाबै गाज।।

१९वीं शती में पन्नानरेश अमानसिंह (राज्यकालः १८०९-१५ ई.) के बाद उनकी बहिन-संबंधी कथा भी राछरे में ढल गई और बहनोई को मारने तथा बहिन को विधवा बनाने की इस घटना से उस समय के रजपूती अहं का सजीव उदाहरण सामने आया। लेकिन कजरियों के त्योहार पर उसका असर कम ही रहा। १९-२०वीं शती में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, फिर भी कजरियों से संबद्ध आदर्श व्यापक भाई-चारे में ढल गए और एक लोकतांत्रिक स्वरूप कुछ-कुछ उभरता दिखाई देने लगा है। बहरहाल इस तथ्य से किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि तमाम विसंगतियों के इस युग में भी कजरियों के लोकादर्श सामाजिक और पारिवारिक एकता तथा प्रेम के सम्बल हैं।

महोबा-का बेजोड़ असर-कजरियों के त्यौहार में महोबा के इतिहास काइ तना सघन प्रभाव है कि आज भी कजरियाँ बहुत-सी जगहों में भादों के शरू की परमा के दिन खोंटी-सिराई जाती है और मार्ग में रोकी भी जाती हैं। महोबा की उस घटना को लोकगीत के रूप में आज भी गाया जाता है और उससे भाई-बहिन के प्रेम को नयी प्रेरणा मिलती है। राठ (जिला हमीरपुर) में कजरियों के जुलूस के साथ आल्हा, ऊदल चंद्रावलि, पृथ्वीराज चौहान, परमाल चंदेल, ब्रह्मा, माल्हनदे आदि का वेश बनाकर लोकपात्र चलते हैं और तालाब पर उस ऐतिहासिक प्रसंग का स्वाँग खेलते हैं, जिससे दर्शकों के हृदयों में वीरता और प्रेम के वही भाव जाग्रत होकर पुष्ट होते हैं।

एक विशेष बात है जोगियों की। कहा जाता है कि आल्हा, ऊदल, लाखन और उनकी सेना जोगियों के वेश में

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

पृथ्वीराज चौहान की सेना से लड़ी। प्रश्न उठता है क्यों ? कजरियों के लोकगीतों में भी जोगी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह कहीं संदेशवाहक है, तो कहीं गुरु। एक गीत में पति जोगी होने की बात कहता है, दूसरे में भाई जोगी वेश में आता है और तीसरे में जोगी भौजी को छलकर ले जाता है। आखिर यह जोगी कहाँ से आ गया ? बीस-तीस वर्ष पहले महोबा में जोगियों का जुलूस कजरी निकलने के बाद उठा करता था और अनेक जोगी वैराग्यपरक गीत गाते तथा चमीटा बजाते कीर्तिसागर तक जाते थे। उसे 'जुगयाना' उठना कहा जाता था, पर आज वह परम्परा नहीं है। इस सबके पीछे छिपा है १०वीं शती से लेकर १२-१३वीं शती तक महोबा में गोरख-पंथ का जोर। गोखागिरि के पश्चिमी भाग के एक कोने में एक शिला पर सुनरा-सुनरिया कही जाने वाली दो मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। उनमें पुरुष मूर्ति वैराग्य अपनाकर जोगी वेश में जाने को आतुर है और नारी मूर्ति आकर्षक नृत्य करते हुए उसे रोकने की होड़ में मग्न। दरअसल, कजरियों के इस त्योहार पर गोरख मत का प्रभाव उसी युग की देन है, लेकिन धीरे-धीरे वह बिल्कुल समाप्त हो गया है। इन सबसे जाहिर है किइ स त्योहार का केन्द्र महोबा और बुंदेलखंड है।

जुलूस और मेलों की भरमार-कजरियों में जुलूस और मेलों का आयोजन एक लीक जैसा है। कजरियाँ लिए नारियाँ इकट्ठी होकर एक साथ प्रयाण करती हैं, शायद चन्द्रावलि के डोलों की तरह। गत वर्ष महोबा के जुलूस में हाथियों पर चन्द्रिका देवी, आल्हा, पृथ्वीराज, चौड़ा, कैमास आदि, घोड़ों परऊ दल, ब्रह्मा, लाखन आदि, डोलों में चन्द्रावलि और उसकी सखियाँ आदि थे। आगे बाजे, फिर पीछे कीर्तन आदि और तब कजरियाँ लिये स्त्रियों के झुंड। माहिल का भी अनोखा ठाठ था। राठ में भी कुछ इसी तरह का जुलूस निकलता है। जुलूस रियासतों की देन है।

बुंदेलखंड में कजरियों के मेले विख्यात हैं। महोबा का मेला दो दिन रहता है, जिसमें दंगल और सैरा (आल्हा का गायन) प्रमुख है। आस-पास के ग्रामों से बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष आते हैं और भीड़ का एक सागर चोरों तरफ हिलोरें लेता खुद मनमोहक बन जाता है।

सरोवर की प्रतियोगिताएँ-महोबा में चन्द्रावलि के दोने को पृथ्वीराज चौहान ने अपने भाले की नोक से उठाना चाहा था, पर ऊदल की तलवार ने उसे बीच में ही काट दिया था।इ स शस्त्र-लाघव ने जन्म दिया सरोवर की प्रतियोगिताओं को। सरोवर में उतराते नीबू, नारियल, गेंद आदि पर निशानेबाजी पहले घनुष-बाणों या भालों से होती थी, अब बंदूक की गोली से होती है।इ सी तरह की अन्य प्रतियोगिताएँ, जैसे-कुश्ती, आल्हा (सैरा) गाने आदि की, दर्शकों में आज भी वीरता का भाव जाग्रत करती हैं।

सावन कजरिया न देखी-कजरिया लोकप्रसिद्ध रही है, खासतौर से महोबे की कजरिया-ऐतिहासिक घटना से जुड़ी रहने के कारण। प्रचलित आल्हा में कजरियन या भुजरियन की लड़ाई अधिक गाई जाती है। जगनिक के आल्हखंड में भी यह लड़ाई मूल कथा के रूप में रही है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित परमालरासो में पृ. १८१ के छंद ४७८ से ८१५ तक कजरियों के युद्ध का वर्णन है, जिसमें कजरियों से संबंधित दो छंद प्रस्तुत हैं-

श्रवन मास किय सर्वरिय, सर्व सर्वरी चंद।
सजहु कजरिया सुभ घरिय, करहु गान आनंद ।।४८३।।
श्रवन मास किय पर्व सजिय सुचंदेलन रानिय।
सजि सिवका सत दोय अवर डोला सज भारिय।
सज उमंग सब सैन गान कोकिल अधिकारिय।
सजिव सुधा सब नगर किय इक्क इक्क बन आगरिय।
हेम लक्ष दिय दुजन कह कढिय कजरिया सुभ घरिय ।।४८४।।

इ न छंदों में कजरिया एक पर्व बताया गया है। श्रावण की पूर्णिमा को रात्रि की शुभ घड़ी में चंदेल रानियाँ

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/

शिविकाओं और डोलों में कोकिल से मीठे गीत गाती निकलीं। इस ग्रंथ से यह भी पता चलता है कि कजरियों में 'नगर त्रिया सब चालिया' नगर की सब स्त्रियाँ गईं और कीर्तिसागर में कजरियाँ खोंटी। रानी ने दो दोने सिरा दिए, लेकिन तीसरे दोने के लेते ही चौहानों से युद्ध शुरू हो गया। इस तरह रानी ने सात दोने धीरे-धीरे लिए, युद्ध चलता रहा। पूर्णिमा खत्म होने के पहले माल्हनदे और राजा रनिवास चले गए। भादों की परमा को भी लड़ाई हुई और जोगियों ने पृथ्वीराज को मेंड़ (सीमा) के बाहर खदेड़ दिया।

इस पर्व के वर्णन में लोककाव्य और परिनिष्ठित काव्य की एक धारा प्रवाहित हुई है, जो आज भी कवियों की काव्य-प्रेरणा है। मध्ययुग के एक लोकगीत में बेला (पृथ्वीराज चौहान की पुत्री) की सहेली बेला के चलाये (गौने) की बात कहकर महोबा की कजरियों को देखने कीर लालसा प्रकट करती है-

नगर महोबौ न देखो, न देखो किरतुआ ताल।
सावन कजरियाँ न देखी, न देखी चंदेलन फाग।।

लोकगीत की यह कड़ी आज भी हर गाँव की हर आँख में बस गई है, जो महोबा की कजरियाँ अभी तक नहीं देख पाई और आज भी हर चन्द्रावलि की रक्षा करने हजारों आँखें किसी आल्हा-ऊदल को खोजती महोबा आती हैं।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

DOWNLOADED FROM : http://bundelkhand.in/